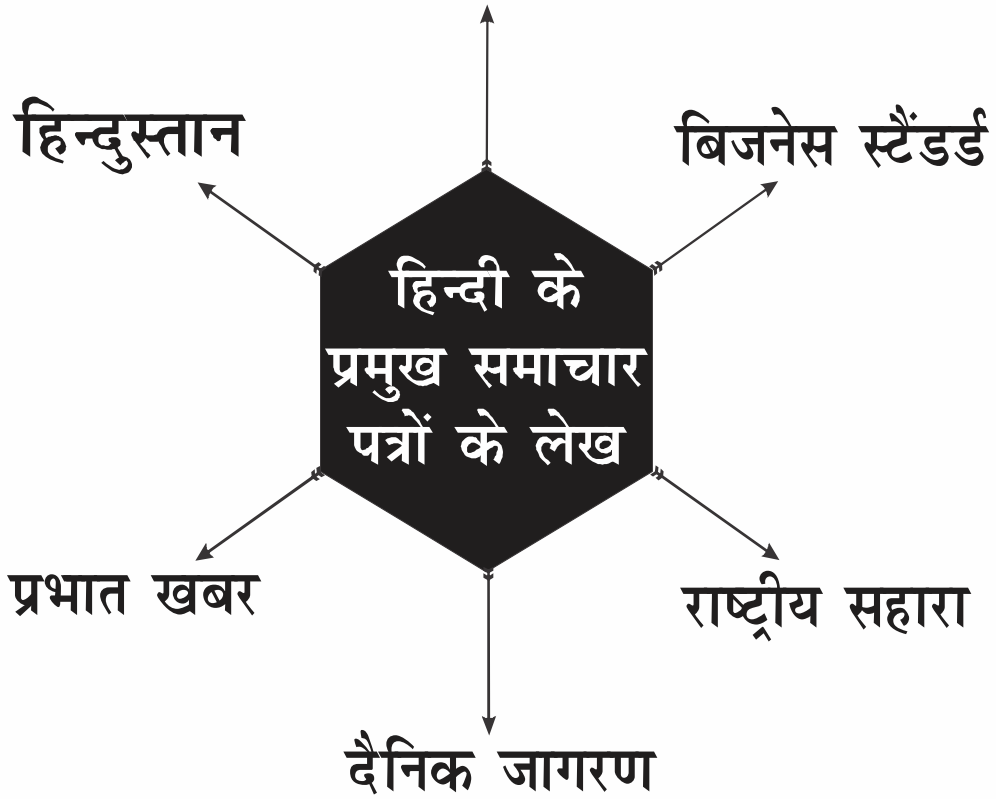


IAS



PCS

दैनिक भास्कर



संदर्भित सार एवं संभावित प्रश्नों सहित

( 11 सितंबर - 16 सितंबर, 2017 )

**-: Head Office:-**

705, 2nd Floor, Main Road, Dr. Mukherjee Nagar, DELHI-110009

Ph. : 011-27658013, 7042772062/63

# अधर में लटके रोहिंग्या मुसलमान

साभार: दैनिक जागरण  
( 11 सितंबर, 2017 )

हृदय नारायण दीक्षित  
(विधानसभा अध्यक्ष, उत्तर प्रदेश)

## सार

इस लेख में लेखक ने म्यांमार में चल रहे बौद्ध-रोहिंग्या संघर्ष की चर्चा की है तथा उनके द्वारा भारत, बांग्लादेश के क्षेत्र में किये जा रहे पलायन एवं होने वाले विरोध से उनका भविष्य अधर में लटक गया है।

विशेष- यह लेख सामान्य अध्ययन प्रश्न पत्र-II ( अंतर्राष्ट्रीय संबंध ) के लिए महत्वपूर्ण है।

दुनिया का भूक्षेत्र बहुत बड़ा है और इस्लामी अंतरराष्ट्रीयता का भी, लेकिन रोहिंग्या मुसलमानों के लिए कहीं कोई जगह नहीं। संप्रति हजारों रोहिंग्या मुसलमान बांग्लादेश और म्यांमार की सीमा पर 'नोमैन्स लैंड' में बांग्लादेश में घुसने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। वे बेघरबार हैं, व्यथित हैं, लेकिन अवांछित हैं। भारत में ही लगभग चालीस हजार रोहिंग्या मुसलमान शरणार्थी हैं। वे जम्मू-कश्मीर, हैदराबाद, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली, हरियाणा और तमिलनाडु तक फैले हुए हैं। वे कभी पहले पूर्वी बंगाल (अब बांग्लादेश) से म्यांमार गए थे। म्यांमार उन्हें अपने यहां के 135 मूल समूहों में नहीं मानता। बांग्लादेश को उन्हें अपना जानकर स्वीकार करना चाहिए, लेकिन बांग्लादेश भी लेने को तैयार नहीं है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने दुख व्यक्त किया है कि लोग उत्पीड़न का शिकार हो रहे हैं। भारत की अपनी सुरक्षा चिंताएं भी हैं। बांग्लादेशी घुसपैठियों और आतंकी संगठनों की साठगांठ से भारत पहले से ही पीड़ित रहा है। सो गृह राज्यमंत्री किरण रिजजू ने उन्हें अवैध शरणार्थी कहा है। भारत या म्यांमार ही नहीं बांग्लादेश सहित दुनिया का कोई भी मुल्क उन्हें लेने को तैयार नहीं है। समस्या बड़ी है और चिंताजनक भी। यूरोपीय देशों में भी इस्लामिक स्टेट की हिंसा से भागे हजारों पीड़ितों को शरण देने की समस्या देखी गई है।

शरणार्थी समस्या नई नहीं है। इसी उपमहाद्वीप में 1971 में इससे भी बड़ी शरणार्थी समस्या थी। 1970 में अविभाजित पाकिस्तान में पूर्वी पाकिस्तान की सघन आबादी ने पश्चिमी पाकिस्तान के प्रति गुस्सा दिखाया। सेना पूर्वी पाकिस्तान को लेकर आक्रामक थी। तीन लाख से ज्यादा लोग मारे गए थे। चार लाख बांग्लादेशी महिलाओं के साथ दुष्कर्म हुए थे। तब लाखों शरणार्थी भारत आए। भारत ने उन्हें प्यार दिया था। तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने पश्चिमी देशों की यात्रा की। उन्होंने पश्चिमी देशों से बांग्लादेश में पाकिस्तानी अत्याचार रोकने के लिए दबाव बनाया। यक्ष प्रश्न है कि अब दुनिया का कोई भी देश मुसलमानों को शरण देने के लिए तैयार क्यों नहीं है? सिर्फ 46 बरस पहले ही बांग्लादेशी शरणार्थियों को हर तरह की मदद देने वाले भारत में अब बांग्लादेशी रोहिंग्या मुसलमानों को लेकर कठोरता क्यों है? इसका सीधा उत्तर यही है कि गुजरे 30-35 बरस में ही जिहादी आतंकवाद ने सामान्य मुसलमानों को भी अपने समूह में शामिल कर लेने का दावा किया है। इसके दोषी आतंकी समूह और उन्हें संरक्षण देने वाली सरकार ही है।

मानव सभ्यता के इतिहास में यह शर्मनाक घटना है। पंथ के आधार पर किसी को श्रेष्ठ या हीन नहीं कहा जा सकता, लेकिन इस्लामी संगठनों ने इस्लामी श्रेष्ठता, इस्लामी स्टेट राज्य की खातिर रक्तपात की ही अपरिहार्यता का प्रचार किया है। आतंकी संगठनों का मूल विचार मजहबी राज्य या इस्लामी स्टेट ही है। इन संगठनों की दृष्टि में 'जो उनकी बात न माने उसकी हत्या ही एकमात्र विकल्प' है। जिहाद की अनेक परिभाषाएं हैं, लेकिन विश्व लोकमत के जेहन में मजहबी राज्य की स्थापना के लिए युद्ध करना ही जिहाद है। आतंकी संगठनों के मजहबी नाम बड़े प्यारे हैं? आतंकी संगठन हरकत उल जेहाद अल इस्लामी का मतलब पवित्र इस्लाम के लिए सक्रियता है। अलकायदा भी खूबसूरत मजहबी नाम है। लश्कर ए तैयबा और जैश ए मोहम्मद को क्या कहेंगे? इस्लामिक स्टेट का आतंक आकाशचारी है ही। ऐसे तमाम रक्तपाती संगठनों के बीच आम मुसलमान की छवि खो गई है। इसीलिए दुनिया के किसी भी देश के पीड़ित मुसलमानों को कोई भी देश शरण देने को तैयार नहीं है।

भारत में सभी विचार और आस्थाओं के प्रति आदरभाव रहा है। भारतीय समाज और सभ्यता का विकास दर्शन और वैज्ञानिक दृष्टिकोण में हुआ है। यहां इंडोनेशिया छोड़ पाकिस्तान, बांग्लादेश सहित सभी इस्लामी देशों से ज्यादा मुस्लिम आबादी स्वयं को सुरक्षित मानती है, लेकिन बीते तीन-चार दशक से आतंकी, जिहादी वारदातों के चलते भारत के बहुसंख्यक समाज में असुरक्षा बोध बढ़ा है। अमेरिका भी बड़े आतंकी हमले के बाद आंतरिक सुरक्षा के मोर्चे पर अतिरिक्त सतर्क रहा है। यूरोपीय देशों में भी ऐसा ही वातावरण है। कट्टरपंथी आतंकी संगठनों समूहों ने विश्व मुस्लिम समुदाय को अन्य समुदायों से अलग थलग कर दिया है। उन्हें शंका की दृष्टि से देखा जा रहा है। सभी मनुष्य जन्मतः मनुष्य हैं। वे अपने विश्वास के कारण ही ईसाई, इस्लामी, यहूदी या हिंदू होते हैं। सभ्यता और संस्कृति के आदर्श उन्हें संवेदनशील मनुष्य बनाते हैं,



लेकिन आतंकी संगठनों ने सभी मुसलमानों का नुकसान किया है। कट्टरपंथी संगठन उदार और प्रगतिशील मुसलमानों को सच्चा मुसलमान नहीं मानते। वे विज्ञान और दर्शन के निष्कर्ष भी स्वीकार नहीं करते। सारी दुनिया आकाश नाप रही है, लेकिन वे मध्ययुगीन मान्यताओं से ही चिपके हुए हैं।

भारत ने उत्कृष्ट जीवन मूल्यों को अपनाया था। उसने 1971 में लाखों बांग्लादेशी लोगों को शरण दी। बाद में आतंकी संगठन खुलकर खेले। पड़ोसी देश ने आतंकी प्रशिक्षण शिविरों के संस्थान चलाए। संसद पर हमला हुआ। निर्दोष बच्चों और महिलाओं को भी मारा गया। इस विचारधारा ने भारत के मन को भी घायल किया है। रोहिंग्या मुसलमानों का मामला सर्वोच्च न्यायालय में भी है। न्यायालय ने केंद्र से जवाब मांगा है। न्यायालय से कहा गया है कि इस बीच सरकार उन्हें देश से न निकाले जाने का आश्वासन दे। कोर्ट ने अंतरिम रोक की मांग नहीं मानी है। जम्मू कश्मीर में रहने वाले 6,000 रोहिंग्या मुसलमानों की ओर से अलग मुकदमा भी दायर है। दोनों मामलों की सुनवाई विचाराधीन है। मसला मानवीय दृष्टिकोण का है। रोहिंग्या मुसलमानों ने भी कहा है कि भारत से निकाले जाने पर उनकी मौत पक्की है। वे बांग्लादेश या म्यांमार नहीं भारत में ही खुद को सुरक्षित मान रहे हैं। यह स्वाभाविक है। पाकिस्तान, बांग्लादेश में भी रक्तपात है। वे मुसलमान होकर भी मुस्लिम बहुल बांग्लादेश में असुरक्षित हैं और बहुसंख्यक हिंदू देश में भी स्वयं को सुरक्षित मान रहे हैं।

आधुनिक तकनीक ने दुनिया को छोटा बनाया है। भारत पर सभी निगाहें हैं। भारतीय संस्कृति और दर्शन सर्वाधिक प्रचीन हैं भी। अमेरिका शक्ति संपन्न है, लेकिन सभ्यता की समझ चिंताजनक है। 24 बरस पहले 1993 में अमेरिकी चिंतक हंटिंगटन ने 'द क्लैश ऑफ सिविलाइजेशन' नाम से किताब लिखी थी। वह लिखते हैं 'सर्व ब्रिटेनवाद की जगह अब सर्व अमेरिकीवाद युग आ गया है। इस्लाम की जनसंख्या का विस्फोट हुआ है।' उन्होंने फ्रिस्टोफर डायसन को उद्धृत किया है कि 'बड़े पंथों के आधार पर ही बड़ी सभ्यताएं टिकी हैं।' लेकिन सच ऐसा नहीं है। इस्लाम और ईसाइयत के विश्वासीजनों की संख्या बड़ी है, लेकिन कोई सभ्यता पंथिक मजहबी संख्या बल के आधार पर ही श्रेष्ठ नहीं होती। ईसाई, यहूदी और इस्लाम अनुयायी एक ही सामी परंपरा के हैं। तीनों युद्धरत रहते हैं। सभ्यताएं नहीं लड़तीं। बर्बरता ही रक्त पिपासु होती है। रोहिंग्या मुसलमानों की समस्या कट्टरपंथी मजहबी संगठनों की देन है। दुर्भाग्यपूर्ण है कि बेघरबार लोग भी अपनी पहचान के कारण 'दो गज जमीन' के लिए तरस रहे हैं।

## संबंधित तथ्य

### कौन हैं रोहिंग्या?

- 1400 ईस्वी से अराकान में बसे हैं रोहिंग्या बर्मा (अब म्यांमार) के अराकान प्रान्त में 1400 ईस्वी में ये मुसलमान आ बसे थे। नाक-नक्श से ये एशियाई हैं। भारतीय उपमहाद्वीप से आए हुए लगते हैं। अराकान प्रान्त म्यांमार के पश्चिम और बांग्लादेश के पूरब में स्थित है। 1430 ईस्वी में अराकान पर शासन करने वाले बौद्ध राजा नारमीखला ने इन्हें शरण दिया था। उनके दरबार में ये नौकर-चाकर से लेकर बाहर मजदूरी का काम करते थे।
- 1785 ईस्वी में बौद्धों का अराकान पर अधिकार हुए नरसंहार जब हिन्दुस्तान में मुगल कमजोर हुए और अंग्रेजों की ताकत मजबूत होती चली गयी। उसी समय 1785 ईस्वी में बर्मा के बौद्धों का अराकान पर अधिकार हो गया। करीब 35 हजार रोहिंग्या मुसलमान खदेड़ दिए गये या नरसंहार का शिकार हुए।

### द्वितीय विश्वयुद्ध में बौद्ध-जापानियों से लड़े रोहिंग्या-

अंग्रेज द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान अंग्रेजों को बर्मा से खदेड़ दिया गया। जापानी सैनिकों के सामने वे टिक नहीं सके। तब बौद्धों के हौंसले बुलन्द हो गये। उन्होंने रोहिंग्या मुसलमानों से पुराना हिसाब बराबर करना शुरू कर दिया। ये वो समय था जब सुभाष चन्द्र बोस हिन्दुस्तान की आजादी के लिए अंग्रेजों के खिलाफ लड़ रहे थे और जापानी समर्थन से अपनी सेना को मजबूत कर रहे थे। रोहिंग्या मुसलमानों की सहानुभूति अंग्रेजों के साथ बनी रही। जापानी सैनिकों ने जासूसी का आरोप लगाकर रोहिंग्या मुसलमानों के साथ ज्यादती की। डर से करीब एक लाख मुसलमान एक बार फिर बंगाल भाग गये।

### 1962 में रोहिंग्या ने मांगा 'स्वतंत्र राष्ट्र'

1962 में जब जनरल नेविन तख्ता पलटा, तब रोहिंग्या मुसलमानों ने भी इस अवसर को स्वतंत्र होने की लड़ाई के तौर पर लिया। मगर, नये सैनिक शासक ने रोहिंग्या मुसलमानों की आवाज बुरी तरह से कुचल दी। उन्हें 'स्टेट लेस' घोषित कर दिया गया। चूकि आम बौद्धों की भावना रोहिंग्या मुसलमानों के खिलाफ रही थी और जिसकी वजह अतीत में दोनों के बीच हुए संघर्ष का इतिहास रहा था, इसलिए सैनिक शासन ने इस भावना का फायदा उठाते हुए रोहिंग्या मुसलमानों पर जुल्म किए।

### म्यांमार सरकार नहीं सुन रही है दुनिया की सलाह

संयुक्त राष्ट्र, एमनेस्टी इन्टरनेशनल और अमेरिका तक ने म्यांमार सरकार से रोहिंग्या मुसलमानों के साथ सही तरीके से पेश आने की अपील की है, मानवाधिकार की रक्षा की अपील की है, लेकिन म्यांमार सरकार के कानों में जू तक नहीं रेंग रही है। नयी समस्या दुनिया भर के जेहादी तत्व हैं जो बिन मांगे समर्थन देकर रोहिंग्या मुसलमानों की समस्या बढ़ा रहे हैं। वहीं भारत जैसे देशों की प्रतिष्ठा भी फंसी हुई है जो इस मामले में बहुत कुछ कर नहीं पा रहा है।

## संभावित प्रश्न

रोहिंग्या प्रवासियों को भारत में प्रवेश देने में भारत के समक्ष क्या बाधाएं हैं? इस मुद्दे को लेकर भारत के ऊपर कौन सी अंतर्राष्ट्रीय बाध्यताएं हैं? चर्चा करें।

# नदियों को जोड़ने में चुनौतियां कम नहीं

साभार: नई दुनिया  
( 12 सितंबर, 2017 )

मृगाल पांडेय  
(वरिष्ठ साहित्यकार एवं स्तंभकार)

## सार

इस लेख में लेखक ने वर्तमान में फिर से उभरी नदियों के जोड़ने की बहस के सन्दर्भ में इस चर्चा को प्रस्तुत किया है तथा यह भी बताया है कि नदियों के जोड़ने में कई प्रकार की समस्याएं मौजूद हैं।

## विशेष- यह लेख सामान्य अध्ययन प्रश्न पत्र-I ( भूगोल ) के लिए महत्वपूर्ण है।

भारत एक नदी मातृक देश है। यहां की तमाम बड़ी-छोटी नदियों ने ही अपने तटों पर यहां हजारों बरसों से नाना सभ्यताओं और परंपराओं को उपजाया व सींचा है। बचपन से ही हर बच्चा सप्त-महानदियों का गुणगान सुनता है, जब-जब कोई जन किसी भी देवप्रतिमा का पवित्र जल से अभिषेक करे। 'गंगेयमुनेश्चौवगोदावरिसिंधुकावेरी जलेअस्मिन्सन्धिं कुरु के परिचित मंत्र में हर पात्र के जल में सात बड़ी नदियों- गंगा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती, नर्मदा, सिंधु, कावेरी के समावेश की कामना है। जल ही जीवन है, इसलिए देवता भी बिना जल के अभिषेक के प्रसन्न नहीं किए जा सकते। अन्य धर्मों में भी पारंपरिक वंदना वजू या मस्तक पर पवित्र जल के छिड़काव बिना संपन्न नहीं की जा सकती।

जल का इस उपमहाद्वीप के जीवन में महत्व समझकर सन् 1858 में सर आर्थर थॉमस कॉटन नाम के एक अंग्रेज इंजीनियर ने पहले-पहल सरकार को सुझाव दिया था कि मानसून तो चार ही महीने का होता है, वह भी दैवनिर्भर। उसके बाद यह महादेश लगातार बाढ़-सुखाड़ से किसी न किसी इलाके में जूझता रहता है। लिहाजा भारत की कुछ बड़ी नदियों को क्यों न नहरों के जाल की मार्फत इस तरह से जोड़ दिया जाए कि एक साथ सारे देश को, हर मौसम में जीवन-यापन और खेती दोनों के लिए पर्याप्त पानी मिल सके। उनके इस सुझाव में दम था, लेकिन इसकी प्रस्तावित अभियांत्रिकी का काम बहुत पेचीदा और खर्चीला था। 57वीं क्रांति की मार से उबर रही ब्रिटिश सरकार के लिए करने को तब और भी कई जरूरी प्रशासकीय काम सर पर सवार दिखते थे। लिहाजा यह विचार कागजों पर ही सीमित रहा।

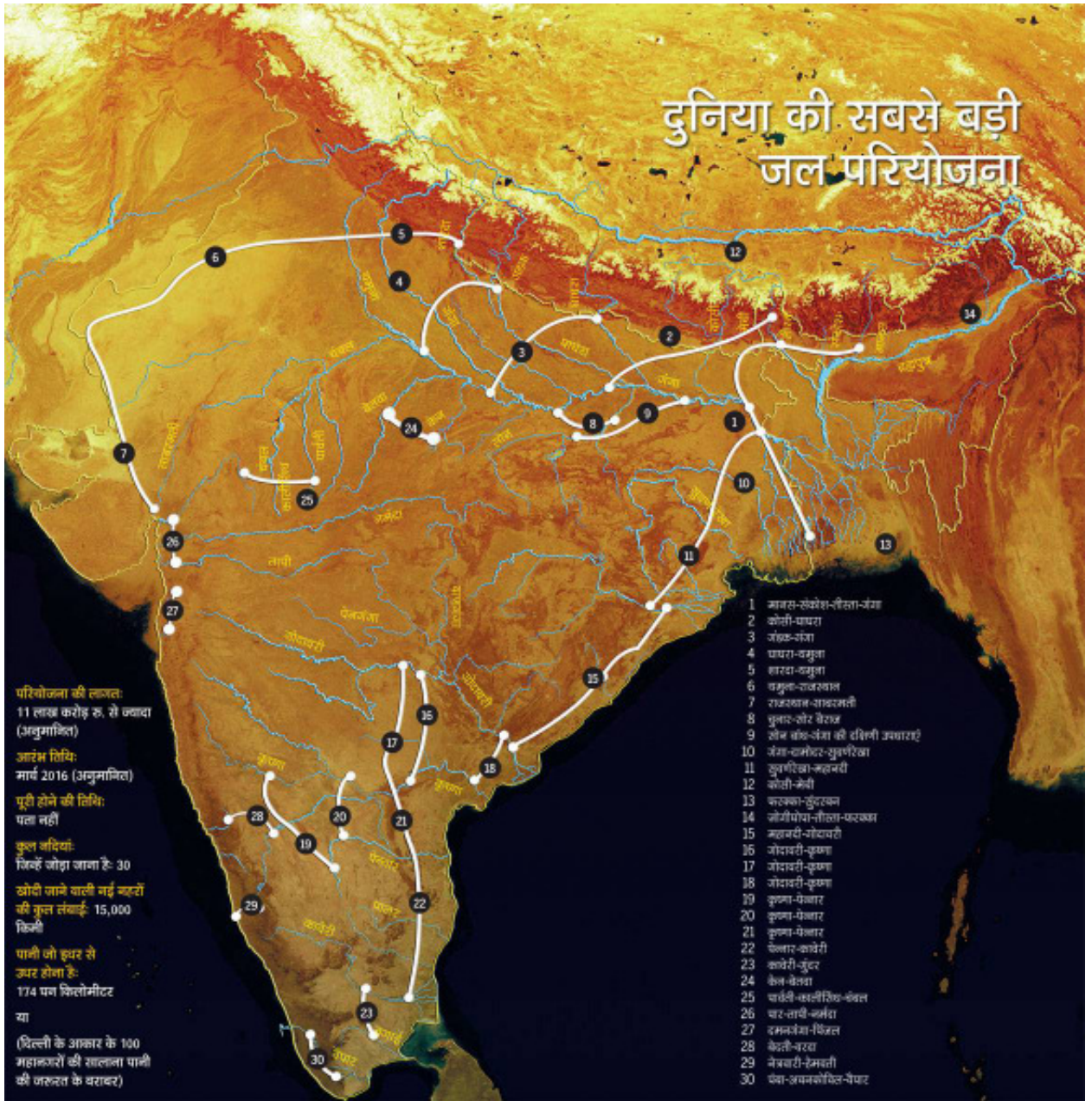
कोई डेढ़ सौ बरस बाद लोकतांत्रिक भारत में पानी की बढ़ती किल्लत के दबाव से इस विचार को फिर सामने लाया गया। पर इस बार जब बात निकली तो दूर तलक गई। कुछ बड़ी बातें सामने आईं, जिनके अनुसार आज की बुनियादी तौर से बदल चुकी भौगोलिक, राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों में यह मामला परवान चढ़ाना आसान नहीं होगा। फिर खर्च की भी बात है। देश के सारे जल-संसाधनों की शक्ति बदलकर 30 बड़ी नदियों और 3000 अन्य जलस्रोतों को जोड़ने वाली इस विराट परियोजना को परवान चढ़ाने के लिए कम से कम 15,000 किलोमीटर नहरें बनानी होंगी। इसका कुल खर्च आकलन के अनुसार कम से कम तीन ट्रिलियन डॉलर बैठेगा, जो समयानुसार और भी बढ़ सकता है। क्या येन-केन अर्थव्यवस्था को पटरी पर रखने के लिए दिन-रात जूझ रहा देश इतना भारीभरकम व्यय सह सकता है? इस सबके बावजूद सरकार में योजना के पैरोकारों का कहना है कि तमाम जोखिमों के बाद भी नदी जोड़ने वाली जल व्यवस्था के तीन भारी फायदे होंगे। पहला फायदा, यह करीब 8 करोड़ सात लाख एकड़ जमीन की सिंचाई की व्यवस्था सुलभ कर देगा। दो, इससे बड़े पैमाने पर पनबिजली योजनाएं चालू की जा सकेंगी, जिनसे हमारे हर गांव को बिजली मिल सकेगी। फिर सालाना जल की उपलब्धि भारत की दो बड़ी तकलीफों- सुखाड़ और बाढ़ दोनों को भी कम करेगी, जो हर बरस लाखों लोगों को दरबंद करती और भूखा बनाती आई हैं।

अब आइए इस प्रस्ताव के विरोधियों की आपत्तियां भी समझें। इतनी बड़ी परियोजना एक ही तरह के नक्शे के तहत नहीं चलाई जा सकती। इसके तीन बड़े भाग कर उनके लिए तीन तरह के कार्यक्रम बनाने जरूरी होंगे। एक भाग वह होगा, जो दुर्गम होते हुए भी जलसंपन्न सारे उत्तर भारत की उन बड़ी नदियों को जोड़ेगा, जिन सबके गोमुख हिमालय में हैं। पर उत्तरी जलक्षेत्र में किसी भी तरह के हस्तक्षेप से पहले दो पड़ोसी देशों- नेपाल और भूटान को भी अनिवार्यतः राजी करना होगा जिनसे हम जल साझा करते आए हैं। भूगर्भीय दृष्टि से इस बेहद नाजुक इलाके की लगातार बिगड़ती पर्यावरण दशा के मद्देनजर हिमालय में पहाड़ों से किसी तरह की बड़ी छेड़छाड़ के संभावित सभी नतीजों पर भी सोचना होगा। दूसरे हिस्से में दक्षिण भारत की 16 नदियों का क्षेत्र आता है, जो उत्तर की तुलना में कम जल संसाधनयुक्त रहा है। यहां की बड़ी नदियां एकाधिक राज्यों से होकर बहती हैं। इसके मद्देनजर योजना के तीसरे तथा खासे पेचीदा हिस्से में अंतरराज्यीय जल बंटवारे तथा बांध निर्माण से जुड़े नाजुक मसलों को रखा गया है, जिन पर बहुत समय से तमिलनाडु व कर्नाटक, महाराष्ट्र और गुजरात, राजस्थान और गुजरात के बीच तनातनी चली आई है।

इस बिंदु पर गौरतलब यह है कि नदियों को जोड़ने की योजना का मूल खाका बहुत पहले की भौतिक स्थिति और नदी जलस्तर पर बनाया गया था। तब से अब तक ग्लोबल वार्मिंग तथा आबादी में बेपनाह बढ़ोतरी से भारत में बहुत बड़े पैमाने पर तरह-तरह के बदलाव आ चुके हैं। उदाहरण के लिए 1901 से 2004 तक के कालखंड के उपलब्ध मौसमी डाटा पर किए (मुंबई तथा चेन्नई के भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थानों के समवेत) शोध से यह जानकारी मिली है कि सौ बरसों में देश की आबादी तो 32 करोड़ से बढ़कर सवा सौ करोड़



# दुनिया की सबसे बड़ी जल परियोजना



हो गई, लेकिन उसी के साथ देशभर में होने वाली कुल बारिश 19 फीसदी घट गई है। नतीजतन महानदी तथा गोदावरी सरीखी दक्षिणी नदियों के क्षेत्र, जो कभी अतिरिक्त जल से संपन्न थे, उनमें आज पानी की भारी कमी हो गई है। उत्तर में भी गंगा, यमुना व ब्रह्मपुत्र सभी के उद्गम-स्रोत ग्लेशियर तेजी से पीछे सरकते जा रहे हैं।

इसके अलावा एक बात और! मूल नदी जोड़ो योजना सारे भारत भूमि को एक सरीखा मानकर चलती है। जबकि भारत की बनावट कहीं पहाड़ी है, तो कहीं मैदानी। हमारी तकरीबन सारी नदियां ऊबड़-खाबड़, रेतीली, पथरीली हर तरह की भौगोलिक जमीन से गुजरती हैं। इससे उन सबके जल की कुछ रासायनिक विशेषताएं आ गई हैं और उनके ही बूते हर इलाके का अलग-अलग किस्म का जलचर, थलचर जीवन बना, और वानस्पतिक विकास हुआ है। नदियों को गैर-कुदरती तरह से जोड़ने से जब दो अलग तरह के जल मिलेंगे, तो हर नदी के गिर्द अनादिकाल से मौजूद तमाम तरह की वनस्पति और जलचरों में भारी भले-बुरे बदलाव आ सकते हैं। और वैज्ञानिक कहते हैं कि उनके बारे में अभी कोई अंदाजा लगाना कठिन है। उधर लगभग 27.66 लाख एकड़ डूबने से कोई 15 लाख की आबादी भी बेघर हो जाएगी। उदाहरण के लिए केन तथा बेतवा नदियों को लें, जिन पर काम जारी है। उनको जोड़ने के दौरान उस इलाके की 5,500 हेक्टेयर जमीन डूब में आएगी। इससे पन्न का अभयारण्य दुष्प्रभावित होगा और वहां के संरक्षित बाघों के साथ दोनों नदियों के दुर्लभ होते जा रहे घड़ियालों और मछलियों की प्रजातियों के लुप्त होने की भी आशंका बनती है। राजनीतिक चुनौतियां भी कम नहीं। पानी की लगातार बढ़ती कमी ने जल बंटवारे के मुद्दे को राजनेताओं के क्षेत्रीय वोट समूहों की तुष्टि के लिए बहुत महत्वपूर्ण बना डाला है। उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश, तमिलनाडु और कर्नाटक सभी संशंक हैं। संविधान के तहत चूंकि जल संसाधनों पर अंतिम राजकीय हक राज्य सरकारों के पास होता है, तो जिस भी राज्य को लगेगा कि नदी जोड़ने से उसके लोगों के लिए पानी कम हो जाएगा, वे तुरंत योजना पर अड़ंगा लगा सकते हैं। कुल मिलाकर नदी जोड़ो योजना की जितनी तारीफ की गई है, वह उसके लायक नहीं साबित होती। कम से कम अपने मौजूदा नक्शे के तहत!

## संबंधित तथ्य

### नदी जोड़ो योजना का इतिहास

- भारत की सारी बड़ी नदियों को आपस में जोड़ने का प्रस्ताव पहली बार ब्रिटिश राज के चर्चित इंजीनियर सर आर्थर कॉटन ने 1858 में दिया था। सोच यह थी कि नहरों के विशाल जाल के जरिये नदियां आपस में जुड़ जाएंगी तो न सिर्फ ब्रिटिश साम्राज्य के इस उपनिवेश में आयात-निर्यात का काम तेज और आसान होगा बल्कि एक ही वक्त पर कहीं सूखे और कहीं बाढ़ की समस्या से निपटा जा सकेगा। कॉटन इससे पहले कावेरी, कृष्णा और गोदावरी पर कई बांध और बड़ी सिंचाई परियोजनाएं बना चुके थे। लेकिन तब के संसाधनों के बूते से बाहर होने के चलते यह योजना आगे नहीं बढ़ सकी।
- नदी जोड़ परियोजना आजादी के बाद तब फिर सुर्खियों में आई जब 1970 में तत्कालीन सिंचाई मंत्री केएल राव ने एक राष्ट्रीय जल ग्रिड बनाने का प्रस्ताव दिया। राव का कहना था कि गंगा और ब्रह्मपुत्र जैसी नदियों की घाटी में ज्यादा पानी रहता है जबकि मध्य और दक्षिण भारत के इलाकों में पानी की कमी रहती है। उनकी सोच यह थी कि उत्तर भारत का अतिरिक्त पानी मध्य और दक्षिण भारत तक पहुंचाया जाए। राव की गंगा कावेरी नहर योजना की सबसे ज्यादा चर्चा हुई थी। इसके तहत ढाई हजार किलोमीटर से ज्यादा लंबी नहर के जरिये गंगा के करीब 50 हजार क्यूसेक पानी को करीब साढ़े पांच सौ मीटर ऊंचा उठाकर दक्षिण भारत की तरफ ले जाया जाना था। लेकिन केंद्रीय जल आयोग ने इस योजना को आर्थिक और तकनीकी रूप से अव्यावहारिक बताते हुए खारिज कर दिया।
- इसके बाद नदी जोड़ परियोजना की चर्चा 1980 में हुई। इस साल भारत के जल संसाधन मंत्रालय ने एक रिपोर्ट तैयार की थी। नेशनल परस्पेक्टिव फॉर वाटर रिसोर्सेज डेवलपमेंट नामक इस रिपोर्ट में नदी जोड़ परियोजना को दो हिस्सों में बांटा गया था—हिमालयी इलाका और प्रायद्वीप यानी दक्षिण भारत का क्षेत्र। 1982 में इस मुद्दे पर नेशनल वाटर डेवलपमेंट एजेंसी के रूप में विशेषज्ञों की एक संस्था बनाई गई। इसका काम यह अध्ययन करना था कि प्रायद्वीप की नदियों और दूसरे जल संसाधनों को जोड़ने का काम कितना व्यावहारिक है। इस संस्था ने कई रिपोर्टें दीं। लेकिन बात वहीं की वहीं अटकी रही।
- केंद्र में भाजपानीत एनडीए सरकार आने के बाद नदी जोड़ परियोजना की फाइलों पर चढ़ी धूल फिर झाड़ी गई। 2002 में देश में भयानक सूखा पड़ा था। इसके बाद तत्कालीन प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने नदियों को आपस में जोड़ने के काम की व्यावहारिकता परखने के लिए एक कार्य दल का गठन किया। इसने उसी साल अपनी रिपोर्ट सौंप दी थी। इसमें भी परियोजना को दो भागों में बांटने की सिफारिश की गई। पहले हिस्से में दक्षिण भारतीय नदियां शामिल थीं जिन्हें जोड़कर 16 कड़ियों की एक ग्रिड बनाई जानी थी। हिमालयी हिस्से के तहत गंगा, ब्रह्मपुत्र और इनकी सहायक नदियों के पानी को इकट्ठा करने की योजना बनाई गई जिसका इस्तेमाल सिंचाई और बिजली परियोजनाओं के लिए होना था। लेकिन फिर 2004 में कांग्रेसनीत यूपीए की सरकार आ गई और मामला फिर ठंडे बस्ते में चला गया।
- इसके बाद यह परियोजना 2012 में सुर्खियों में आई। इस साल सुप्रीम कोर्ट ने केंद्र सरकार को निर्देश दिया कि वह इस महत्वाकांक्षी परियोजना पर समयबद्ध तरीके से अमल करे ताकि देरी की वजह से इसकी लागत और न बढ़े। अदालत ने इसकी योजना तैयार करने और इस पर अमल करने के लिए एक उच्च स्तरीय समिति भी बनाई थी। अब केन-बेतवा लिंक के साथ आखिरकार नदी जोड़ो परियोजना जमीन पर उतरने वाली है।

### इस योजना के विपक्ष में तर्क:

- सामाजिक कार्यकर्ताओं का कहना है कि इतने व्यापक स्तर पर प्रकृति से खिलवाड़ के नतीजे बहुत भयानक होंगे। उनके मुताबिक अगर नदियों की भूगर्भीय स्थिति, उनमें गाद आने की मात्रा, देश में ही दूसरी बड़ी नहर परियोजनाओं के अनुभवों और विदेशों में ऐसी परियोजनाओं के हथ्र पर ठीक से गौर किया जाए तो नदी जोड़ परियोजना बहुत विनाशकारी साबित होने वाली है।
- कई विशेषज्ञ मानते हैं कि इस परियोजना में सबसे बड़ी अड़चन कुदरत ही है। नदियों का एक स्वाभाविक ढाल होता है जिसे वे अपने आप पकड़ती हैं और इसके इर्दगिर्द के इलाके को खुशहाल बनाते हुए आगे बढ़ती हैं। देश में ही ऐसे कई उदाहरण हैं जो बताते हैं कि जब नदियों के पानी की दिशा नहरों के जरिये मोड़ी गई तो उन्होंने आसपास की जमीन को खारा और दलदली बनाते हुए इसका बदला ले लिया।

### विदेश में इस योजना को लेकर रुख:

नदी जोड़ने के नतीजों को देखते हुए दुनिया के कई देश इससे तौबा कर चुके हैं। अमेरिका में कोलैराडो से लेकर मिसिसिपी नदी घाटी तक बड़ी संख्या में बनी ऐसी परियोजनाएं गाद भर जाने के कारण बाढ़ का प्रकोप बढ़ाने लगीं और उनसे बिजली का उत्पादन भी धीरे-धीरे गिरता गया। आखिर में इन परियोजनाओं के लिए बने बांध तोड़ने पड़े। इस पर जो खर्च हुआ सो अलग। विशेषज्ञ बताते हैं कि गंगा या ब्रह्मपुत्र में हर साल आने वाली गाद की मात्रा मिसिसिपी नदी से दोगुनी है। सोवियत संघ के जमाने में साइबेरियाई नदियों को नहरों के जाल के जरिये कजाकिस्तान और मध्य एशिया की कम पानी वाली नदियों की ओर मोड़ने का काम हुआ। लेकिन उनसे भी इन देशों का मोह भंग हो गया

## संभावित प्रश्न

नदी जोड़ो परियोजना के सबल पक्ष तो हैं ही, किन्तु इससे जुड़ी कई सारी समस्याएं भी हैं। इस कथन के सन्दर्भ में नदी जोड़ने के पक्ष-विपक्ष कि चर्चा करें।



# अर्थव्यवस्था में सुधार के लिए मजबूत हो दूरसंचार

साभार : बिजनेस स्टैंडर्ड  
( 13 सितंबर, 2017 )

श्याम पोन्नप्पा

## सार

इस लेख में लेखक बुनियादी ढांचा और स्पेक्ट्रम साझा करके अर्थव्यवस्था को नई गति प्रदान की जा सकती है। इस संबंध में विस्तार से जानकारी दे रहे हैं।

### विशेष- यह लेख सामान्य अध्ययन प्रश्न पत्र-III ( भारतीय अर्थव्यवस्था ) के लिए महत्वपूर्ण है।

इसमें दो राय नहीं है कि देश की अर्थव्यवस्था कई दिक्कतों से दो-चार है। वह दिशाहीन और गतिहीन भी हो चुकी है। इसके लिए मौजूदा सरकार के कुछ कदम तो जिम्मेदार हैं ही, साथ ही कुछ चीजें विरासत में भी मिली हैं। उदाहरण के लिए पिछली सरकार के आत्मसंतोष, घोटाले और विपक्ष की जिद इसके लिए जिम्मेदार है। इसकी वजह से संसदीय प्रक्रिया को ठेस लगी। इसके बाद आई नई सरकार भी हालात को उस कदर संभाल नहीं पाई जैसी कि उससे अपेक्षा थी। बहरहाल आरोप-प्रत्यारोप से कोई फायदा नहीं है। बल्कि कोशिश यह होनी चाहिए कि आगे सुधार को अंजाम दिया जा सके।

कुछ कदम ऐसे हैं जिनको तत्काल उठाए जाने की आवश्यकता है लेकिन हम शायद उनको टाल रहे हैं। मूलभूत बुनियादी ढांचा हमारी तात्कालिक आवश्यकता है। इसके अलावा सामाजिक संस्थानों और नेतृत्व को भी एकीकृत करने की आवश्यकता है। जरूरत इस बात की है कि कुछ सामान्य व्यवस्थाएं निर्मित की जाएं और संरचनात्मक, उत्पादक गतिविधियों को अंजाम दिया जाए। हालांकि इसमें समय लगेगा और ऐसा करना आसान भी नहीं होगा।

बुनियादी ढांचा क्षेत्र में ब्रॉडबैंड सबसे जल्दी और सबसे तेज प्रतिफल प्रदान कर सकता है। इसके लिए ऐसी नीतियां अपनानी होंगी जो अपने आप पर थोपे गए प्रशासनिक प्रतिबंधों के बजाय मौजूदा संसाधनों को उचित पहुंच दे पाएं। इसके अलावा ऊर्जा, पानी और सीवेज तथा परिवहन आदि के क्षेत्र में काम करना काफी जटिल है। इन कामों में पूंजी भी बहुत ज्यादा लगेगी। इतना ही नहीं बेहतर संचार सहयोग के साथ अन्य बुनियादी सुविधाओं का निर्माण और प्रबंधन करना भी आसान हो जाएगा।

प्रथम द्रष्टया तो यही प्रतीत होता है कि सरकार ऐसा कर रही है। उदाहरण के तौर पर तीन महीने पहले एक अंतर मंत्रालय समूह (आईएमजी) का गठन किया गया जिसे ऋणग्रस्त दूरसंचार क्षेत्र को निजात दिलाने संबंधी हल सुझाने थे। अंतरिम रिपोर्ट से कोई अच्छे संकेत नहीं निकलते। इसमें सुझाव दिया गया है कि किसी बड़े नीतिगत बदलाव की आवश्यकता नहीं है क्योंकि सुधार के संकेत मिल रहे हैं। दुर्भाग्य की बात है कि आईएमजी की अंतिम अनुशांसा भी ऐसी ही है। उसने स्पेक्ट्रम और लाइसेंस शुल्क भुगतान को 10 वर्ष के बजाय 16 वर्ष कर दिया है और ब्याज दरों में करीब 2 फीसदी की कमी कर दी है। बहरहाल लाइसेंस शुल्क या स्पेक्ट्रम शुल्क में कोई कमी नहीं की गई है, न ही समावेशन के लिए स्पेक्ट्रम की सीमा शिथिल की गई है। अंतरसंबंधित शुल्क का निर्धारण दूरसंचार नियामक प्राधिकरण (ट्राई) करेगा और स्पेक्ट्रम नीलामी को अप्रैल 2018 के बाद अंजाम दिया जाएगा। परंतु अत्यधिक नकदी और अत्यधिक प्रतिस्पर्धा वाले इस क्षेत्र में पूंजी की आवश्यकता को कुछ और महीने तक टालने तथा अन्य प्रस्तावित उपायों से हालात में कोई बदलाव नहीं आएगा।

क्या इससे दूरसंचार क्षेत्र में सुधार आएगा? मुझ समेत कई पर्यवेक्षकों और सेवाप्रदाताओं को लगता है कि ऐसा नहीं होगा। नीचे दी गई वजहों से यह प्रश्न उठता है कि क्या आईएमजी ने अपनी अनुशांसाएं पूरी जानकारी के आधार पर कीं या फिर क्या उनको हकीकत का पूरा अंदाजा था।

### बड़े बदलाव क्यों आवश्यक?

कड़े नीतिगत कदम उठाने की तत्काल आवश्यकता है। स्ट्रेटजी एंड (पहले इसका नाम बूज एंड कंपनी था और अब पीडब्ल्यूसी का हिस्सा) ने सुझाव दिया कि विकसित देशों की दूरसंचार सेवा प्रदाता कंपनियों का डाटा सेवाओं पर मार्जिन नकारात्मक है। यह भारत के लिए अहम है। क्योंकि एक तो हमें नेटवर्क और डिलिवरी क्षेत्र में अहम वृद्धि की आवश्यकता है, दूसरा यह व्यवहार्य है और तीसरा इसके बावजूद इसमें स्थायित्व है और नकदी की आवक सकारात्मक है।

हकीकत यह है कि पहले से संकटग्रस्त इस क्षेत्र का राजस्व सन 2016 में रिलायंस जियो के आगमन के बाद तेजी से गिरा है। इसके साथ ही सरकार का लाइसेंस और स्पेक्ट्रम शुल्क भी कम हुआ है। इस क्षेत्र की बात करें तो रिलायंस जियो ने पूरे बाजार में उथलपुथल मचाने के बावजूद जून 2017 तक के छह माह के लिए केवल 47.81 करोड़ रुपये की राशि लाइसेंस और स्पेक्ट्रम शुल्क के रूप में चुकाई। यह सेवाप्रदाताओं के कुल भुगतान के एक फीसदी से भी कम था क्योंकि उसका राजस्व कम रहा। इसके विपरीत भारती एयरटेल ने 2,902.75 करोड़ रुपये, वोडाफोन ने 2005.25 करोड़ रुपये और आइडिया सेल्युलर ने 1677.67 करोड़ रुपये चुकाए। इस नीति ने इस क्षेत्र को बहुत बुरी तरह प्रभावित किया क्योंकि राजस्व और सरकारी संग्रह में तेजी से गिरावट आई। इससे बुनियादी ढांचा कमजोर पड़ा।

यद्यपि केवल उच्च सरकारी राजस्व को मानक मानना भी ठीक नहीं है। स्टैंडर्ड एंड पुअर्स की एक रिपोर्ट में राजस्व में इस वर्ष 10 फीसदी गिरावट का अनुमान है। लेकिन यह तो केवल एक पहलू है। बाजार की हालत लगातार खराब रहने वाली है। परिचालन राजस्व और सरकारी संग्रह में कमी उसे प्रभावित करेगी।

इन तमाम वजहों से उद्योग की क्षमता बुरी तरह प्रभावित हो रही है जबकि देश को बेहतर प्रदर्शन और पहुंच की आवश्यकता है क्योंकि देश में करीब 30 करोड़ डाटा ग्राहक हैं। पर्याप्त नेटवर्क पहुंच का निर्माण करना होगा केवल तभी शिक्षा, स्वास्थ्य और मनोरंजन की सरकारी और वाणिज्यिक जरूरतें पूरी की जा सकेंगी।

केवल सरकार ही उचित नीतियां और नियम विकसित कर सकती है। सन 1997-98 में इस क्षेत्र में ठहराव के बाद तत्कालीन राजग सरकार ने सन 1999 में दूरसंचार नीति की मदद से एक राजस्व साझेदारी व्यवस्था की थी। शुरुआत में सरकार की हिस्सेदारी बहुत ज्यादा थी लेकिन बाद में इसमें कमी की गई और प्रतिस्पर्धा बढ़ाई गई। मोबाइल टेलीफोनी में तेज इजाफा हुआ और इसके साथ ही सरकारी राजस्व भी बढ़ा। ब्रॉडबैंड में भी वैसी तेजी लाने के लिए हमें तत्काल कुछ नीतिगत कदमों की आवश्यकता है:

अ) लागत कम करने के लिए बुनियादी संरचना साझा करना। इसके लिए दो-तीन कंपनियों का समूह बने ताकि प्रतिस्पर्धा हो। इनकी निगरानी सरकार के पास रहे। उदाहरण के लिए स्वीडन का 70 फीसदी हिस्सा टेलीनॉर और एचआई3जी के साझा नेटवर्क से आच्छादित है। इसे बड़े शहरों के बाहर साझा किया जाता है। साझा नेटवर्क के लिए उपकरण उपलब्ध हैं। हमें केवल नीतियों की आवश्यकता है।

ब) स्पेक्ट्रम को एक साझा सार्वजनिक संसाधन बनाया जाए। आवंटित स्पेक्ट्रम के लिए लाइसेंसशुदा सेवाप्रदाताओं और विनिर्माताओं और डेवलपर्स को द्वितीयक पहुंच (प्राथमिक धारक को प्राथमिकता दी जाती है) उचित राजस्व-साझेदारी वाली कीमत पर दी जाए वह भी बिना शुल्क के। इसकी शुरुआत बिना इस्तेमाल के टीवी की बची हुई फ्रीक्वेंसी से की जाए।

स) वाईफाई के लिए वैश्विक मानकों के अनुरूप स्पेक्ट्रम आवंटित किया जाए।

ऐसा करने से स्पेक्ट्रम और नेटवर्क का अधिकतम इस्तेमाल संभव होगा। यह आज की तरह कृत्रिम प्रतिबंधों वाला नहीं होगा। बेहतर नेटवर्क और सेवाओं से हम सभी लाभान्वित होंगे। इसके साथ ही सरकार का राजस्व भी बढ़ेगा।

### स्पेक्ट्रम साझेदारी के लाभ

- स्पेक्ट्रम समेत बुनियादी ढांचे में साझेदारी की वकालत की है। उनका कहना है कि ऐसा करके दूरसंचार क्षेत्र का मुनाफा और उसकी विश्वसनीयता दोनों बहाल किए जा सकते हैं। मित्तल कहते हैं कि एक नेटवर्क ऑपरेटिंग कंपनी की मदद से स्पेक्ट्रम का साझा स्वामित्व रखा जा सकता है। इसे सभी सेवा प्रदाता लीज पर ले सकते हैं। इससे सेवा प्रदाता विपणन कंपनी में बदल जाएंगे और उनकी बैलेंस शीट दुरुस्त हो सकेगी। यह बात समझदारी भरी है।
- खासतौर पर भारतीय बाजार को देखते हुए जहां महंगे स्पेक्ट्रम और रिलायंस जियो द्वारा कीमतों की जंग शुरू करने के बाद मुनाफा जबरदस्त दबाव का शिकार हो गया है। निवेशकों ने दूरसंचार क्षेत्र के शेयरों से दूरी बनानी शुरू कर दी है। विदेशी निवेशकों का रुख भी ठंडा पड़ गया है। वोडाफोन, टेलीनॉर और डोकोमो जैसी विदेशी कंपनियां पहले ही नुकसान उठा चुकी हैं। निकट भविष्य में कारोबारी चक्र में भी किसी सुधार की संभावना नहीं नजर आती। बार्सिलोना में विश्व मोबाइल कांग्रेस में मित्तल ने कहा कि पूंजीगत व्यय बढ़ रहा है जबकि राजस्व में कमी आनी शुरू हो गई है। इसके चलते पूंजी पर प्रतिफल 6.5 फीसदी के निम्न स्तर पर आ गया है। मौजूदा प्रतिस्पर्धी माहौल इसमें और कमी ला सकता है।
- संकट से बचने के लिए समूचे दूरसंचार में समावेशन का दौर चल रहा है। रिलायंस कम्युनिकेशंस और एयरसेल पहले ही विलय की घोषणा कर चुके हैं। वोडाफोन और आइडिया सेल्युलर के बीच भी बातचीत चल रही है। जबकि टेलीनॉर ने अपना कारोबार भारती एयरटेल को बेच दिया। ऐसे हालात में सेवा प्रदाताओं के लिए लागत बचाना जरूरी हो चला है। फिलहाल हर सेवा प्रदाता को अपना नेटवर्क तैयार करना पड़ता है। अगर साझा नेटवर्क होगा तो पूंजीगत व्यय में भारी कमी आएगी। उदाहरण के लिए बेस स्टेशनों की कम आवश्यकता होगी।
- फाइबर ऑप्टिक नेटवर्क की बात करें तो अभी भारती एयरटेल, वोडाफोन, बीएसएनएल और रिलायंस जियो ने अपना-अपना अलग केबल डाला है जबकि सरकार भारतनेट के अधीन एक और केबल बिछाना चाहती है। इसकी वजह से सबका पूंजीगत खर्च बढ़ा है। इसके बजाय अगर सभी सेवा प्रदाता मिलकर एक मजबूत नेटवर्क बनाएं तो बरबादी नहीं होगी। इसी प्रकार स्पेक्ट्रम पूलिंग की भी काफी संभावना है। फिलहाल कुछ नेटवर्क के पास स्पेक्ट्रम खाली पड़ा है जबकि अन्य के पास उसकी कमी है। मित्तल के मुताबिक सेवा प्रदाता एक दूसरे से जरूरत का स्पेक्ट्रम ले सकेंगे। इससे इस दुर्लभ संसाधन का किफायती इस्तेमाल हो सकेगा।
- दरअसल दूरसंचार क्षेत्र में निष्क्रिय संसाधनों की पूलिंग का काम पहले भी होता रहा है। समुद्र के नीचे बिछी केबलों का स्वामित्व सेवा प्रदाताओं के एक समूह के पास ही है। दूरसंचार टावरों को भी साझा किया जाता रहा है। वक्त की जरूरत यह है कि अब इसे सक्रिय बुनियादी ढांचे में भी अपनाया जाए। उदाहरण के लिए स्पेक्ट्रम, बेस स्टेशन, फाइबर ऑप्टिक आदि। मित्तल ने यह भी कहा है कि पूरे देश को एक दूरसंचार क्षेत्र में बदल दिया जाए। इस मशविरे में भी काफी दम है। फिलहाल देश 22 क्षेत्रों में विभाजित है। इनमें से प्रत्येक दूरसंचार क्षेत्र के लिए सेवा प्रदाताओं को अलग टीम रखनी पड़ती है। एक क्षेत्र होने से लागत कम की जा सकेगी। सरकार को इन सुझावों की अनदेखी नहीं करनी चाहिए। दूरसंचार क्षेत्र की बदलावपरक क्षमताओं से हम सभी अवगत हैं लेकिन उसके बावजूद उसके हाल बुरे हैं। देश इस समय डाटा क्रांति के कगार पर है। परंतु कमजोर सेवा प्रदाताओं के साथ वह स्वप्न और साथ ही डिजिटल इंडिया का स्वप्न, दोनों तार्किक परिणति पर नहीं पहुंच पाएंगे।

### संभावित प्रश्न

भारतीय अर्थव्यवस्था में अगर गुणात्मक सुधार लाना है तो अवसंरचना विकास खंड-खंड में नहीं अपितु एकीकृत रूप में देखना होगा। इस कथन के संदर्भ में दूरसंचार क्षेत्र में किये जा सकने वाले सुधारों की चर्चा करें।



## सार

इस लेख में लेखक ने हिंदी दिवस के अवसर पर हिंदी भाषा को लेकर संविधान सभा में हुई बहस तथा उसको लेकर हुई ऐतिहासिक परिचर्चा का एक विश्लेषण प्रस्तुत किया है।

**विशेष- यह लेख सामान्य अध्ययन प्रश्न पत्र-II ( भारतीय राजव्यवस्था ) के लिए महत्वपूर्ण है।**

14 सितंबर को हिंदी दिवस के रूप में मनाया जाता है। वर्ष 1949 में इसी तारीख को संविधान सभा ने एक लंबी और सजीव बहस के बाद देवनागरी लिपि में हिंदी को भारतीय संघ की राजभाषा के रूप में अपनाया था। भारतीय संविधान के भाग XVII के अनुच्छेद 343 से 351 तक इसी विषय के बारे में है। अनुच्छेद 343 (1) में यह घोषणा की गई है कि देवनागरी लिपि में हिंदी संघ की राजभाषा होगी। लेकिन अनुच्छेद 343 (2) और उसके बाद के अनुच्छेदों को पढ़ने से पता चलता है कि भारत जैसे बहुभाषी राष्ट्र में राजभाषा के मुद्दे को बहुत कठिन और जटिल रास्ते से होकर गुजरना है क्योंकि देश के सरकारी संस्थानों में अंग्रेजी में निर्धारित कानूनों, नियमों और विनियमों का ही वर्चस्व है।

इसका एक समझौता के रूप में वर्णन किया जा सकता है। उच्चतम न्यायालय, उच्च न्यायालयों की सभी कार्यवाहियां, संसद और राज्य विधानसभाओं में पेश किए जाने वाले या पारित सभी विधेयकों और अधिनियमों के अधिकृत पाठ, संविधान के तहत पारित सभी आदेश / नियम / कानून और विनियमों को अंग्रेजी में ही होना चाहिए (जैसा औपनिवेशिक भारत में था)। 17 फरवरी, 1987 को संविधान (58वां) संशोधन अधिनियम के पारित होने तक संविधान (संशोधनों में शामिल) का कोई अद्यतन संस्करण संशोधनों के साथ हिंदी में जारी नहीं किया जा सकता था। विभिन्न कारणों से एक राजभाषा के रूप में हिंदी का प्रदर्शन संतोषजनक नहीं रहा है। यही कारण है कि 70 वर्षों के बाद भी हिन्दी अंग्रेजी की जगह लेती हुई कहीं भी दिखाई नहीं दे रही है। हमारे संविधान निर्माताओं ने इस कार्य के लिए केवल 15 साल का समय दिया था।

राजभाषा की अवधारणा राज्य के विभिन्न अंगों जैसे विधायिका, कार्यपालिका, न्यायपालिका और सशस्त्र बलों आदि से संबंधित है। हालांकि, देश अपने सरकारी संस्थानों से कहीं बड़ा है। भारत में महात्मा गांधी ने जो जन जागरण किया वह संस्थानों से बाहर हुआ था। उनका असहयोग आंदोलन या भारत सरकार अधिनियम 1919 के तहत कांग्रेस का चुनाव में भाग लेने के उनके विरोध से यह पता चलता है कि उन्होंने देश की अपने संस्थानों पर निर्भरता को नकार दिया था। गांधीजी औपनिवेशिक भारत में उसके राज्य तंत्र के बीच की खाई और उसके लाखों लोगों के बारे में पूरी तरह जागरूक थे। वे भारत की बजाय भारतीय राष्ट्र को संबोधित करना चाहते थे। गांधीजी ने ऐसा करने के लिए अंग्रेजी की बजाय लोगों की भाषा का उपयोग करने का तरीका अपनाया।

भाषा का यह प्रश्न गांधीजी के स्वदेशी अभियान का अभिन्न अंग था। उन्होंने न यह समझ लिया था कि लोग अपनी भाषा के जरिए ही स्वराज के मिशन में शामिल हो सकते हैं। इसलिए 1915 में दक्षिण अफ्रीका से लौटने के बाद, गांधी ने हिंदी और अन्य क्षेत्रीय भाषाओं के अधिक से अधिक उपयोग पर जोर दिया। प्रताप (हिन्दी) में 28 मई, 1917 को प्रकाशित उनके लेख में हिंदी को राष्ट्रीय भाषा के रूप में स्वीकार करने की वकालत की गई थी।

इसमें उन्होंने कहा था कि ज्यादातर भारतीय, जिन्हें न तो हिंदी आती है और न ही अंग्रेजी, उनके लिए हिन्दी सीखना अधिक आसान होगा। उन्होंने कहा कि केवल डरपोक होने के कारण ही भारतीयों ने अपना राष्ट्रीय कार्य व्यापार हिंदी में करना शुरू नहीं किया है। अगर भारतीयों इस कायरता को छोड़ दे और हिंदी में विश्वास जताएं तो राष्ट्रीय और प्रांतीय परिषदों का कार्य भी इस भाषा में किया जा सकता है।

इसी लेख में गांधीजी ने पहली बार दक्षिण भारत में हिंदी मिशनरियों को भेजने का विचार प्रस्तुत किया। उन्हीं के विचार ने 1923 में स्थापित दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा के रूप में मूर्त रूप लिया। 20 अक्टूबर 1917 को मद्रास में दूसरे गुजरात शिक्षा सम्मेलन में दिया गांधीजी का भाषण महत्वपूर्ण समझा जाता है। इस भाषण में उन्होंने हिंदी को लोकप्रिय बनाने में स्वामी दयानंद सरस्वती के अग्रणी प्रयासों की सराहना की।

स्वामी दयानंद (1824-1883) गांधीजी की तरह ही गुजरात के रहने वाले थे। वे धार्मिक बहस और शिक्षण के माध्यम के तौर पर संस्कृत का उपयोग करते थे। हिमालय क्षेत्र और उत्तर भारत में दशकों तक रहने के बावजूद उन्होंने कभी भी हिंदी सीखने का प्रयास नहीं किया। लेकिन 1873 में, जब वे कोलकाता की यात्रा पर गए, तो उनकी भेंट ब्रह्म समाज के केशव चन्द्र सेन से हुई। सेन ने उन्हें सलाह दी कि वे जनता तक पहुंच बनाने के लिए संस्कृत की जगह हिंदी का उपयोग करें। दिलचस्प बात यह है कि स्वामी दयानंद और केशवचन्द्र सेन दोनों में से कोई भी मूल रूप से हिंदी भाषी नहीं था। उन्होंने इस मैत्रीपूर्ण परामर्श को स्वीकार कर लिया और थोड़े ही समय में हिंदी में महारत हासिल कर ली। उन्होंने अपनी महान कृति सत्यार्थ प्रकाश (1875) की रचना भी हिंदी में ही की। उनके द्वारा स्थापित आर्य समाज ने हिंदी को लोकप्रिय बनाने की सशक्त एजेंसी के रूप में कार्य किया।

इस प्रकार गांधीजी ने हिंदी की मशाल उस जगह से अपने हाथ में थामी, जहां स्वामी दयानंद ने उसे छोड़ा था। जहां एक ओर स्वामी दयानंद का मिशन धार्मिक था, वहीं दूसरी ओर गांधीजी का मिशन राष्ट्रीय था। गांधीजी ने हिंदी को भारतीय मानस को 'उपनिवेशवाद से मुक्त' कराने के साधन के रूप में देखा। हिंदी को लोकप्रिय बनाने के उनके मिशन को दक्षिण भारत में कई लोगों ने आगे बढ़ाया।

जी. दुर्गाबाई (1909-1981) जो आगे चलकर संविधान सभा की सदस्या भी बनीं, ने किशोरावस्था में काकीनाडा (आंध्र प्रदेश), में लोकप्रिय बालिका हिंदी पाठशाला का संचालन किया। बालिका हिंदी पाठशाला का दौरा करने वालों में सी.आर. दास, कस्तूरबा गांधी, मौलाना शौकत अली, जमना लाल बजाज और सी.एफ. एंड्रयूज शामिल थे। वे यह देखकर हैरत में पड़ गये कि कुछ सौ महिलाओं को हिंदी का ज्ञान प्रदान करने वाली पाठशाला का संचालन एक किशोरी द्वारा किया जा रहा है।

लेकिन दुर्गाबाई के संविधान सभा तक पहुंचते-पहुंचते दक्षिण भारत में हिंदी के हालात बदल चुके थे। उन्होंने महसूस किया कि मूल हिंदी भाषियों द्वारा हिंदी के पक्ष में जोशोखरोश से किये गये प्रचार ने अन्य भाषाओं के लोगों को बेगाना कर दिया। स्वयं सेवियों ने जो उपलब्धि हासिल की थी, उत्साही गुमराह लोग उसे नष्ट कर रहे थे। इसलिए उन्होंने 14 सितंबर, 1949 को अपने भाषण में कहा, 'इस सदी के आरंभिक वर्षों में हमने जिस उत्साह के साथ हिंदी को आगे बढ़ाया था, उसके विरुद्ध इस आंदोलन को देखकर मैं स्तब्ध हूं। श्रीमान, उनकी ओर से बढ़-चढ़कर

किया जा रहा प्रचार का दुरुपयोग मेरे जैसे हिंदी का समर्थन करने वाले लोगों का समर्थन गंवाने का जिम्मेदार है और जिम्मेदार होगा।

जी. दुर्गाबाई द्वारा अपने भाषण में जिस कशमकश की बात की है वह 70 साल बाद आज भी प्रासंगिक है। भाषा के कानूनी दर्जे को लागू करने वालों की तुलना में गैर हिंदी भाषी अपने स्वैच्छिक प्रयासों के बल पर हिंदी के प्रति ज्यादा जिम्मेदार होंगे। संवर्द्धित साक्षरता तथा हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं के बीच सांस्कृतिक संपर्क हिंदी के उद्देश्य के लिए ज्यादा मददगार होंगे। प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के करिश्मे ने हिंदी की एक विनीत चलन के रूप में सहायता की है। लक्ष्य अधिकतम लोगों तक ऐसी भाषा में पहुंच बनाने का होना चाहिए, जिसे वे समझ सकते हों।

## स्पेक्ट्रम साझेदारी के लाभ

राजभाषा नीति को लागू करने के लिए 1963 में राजभाषा अधिनियम पारित किया गया और इसमें 1976 में संशोधन किया गया। इसके कुछ प्रमुख उपबंध इस प्रकार हैं:-

1. अधिनियम की धारा 3 के अनुसार (क) संघ के उन सभी सरकारी प्रयोजनों के लिए, जिनके लिए 26 जनवरी, 1965 से तत्काल पूर्व अंग्रेजी का प्रयोग किया जा रहा था और (ख) संसद में कार्य निष्पादन के लिए 26 जनवरी, 1965 के बाद भी हिन्दी के अतिरिक्त अंग्रेजी का प्रयोग जारी रखा जा सकेगा।
  2. केंद्र सरकार और हिन्दी को राजभाषा के रूप में न अपनाने वाले किसी राज्य के बीच पत्राचार अंग्रेजी में होगा, वशर्त उसे राज्य ने इसके लिए हिन्दी का प्रयोग करना स्वीकार न किया हो। इसी प्रकार, हिन्दी भाषी राज्यों की सरकारें ऐसे राज्यों की सरकारों के साथ अंग्रेजी में पत्राचार करेगी और यदि वे ऐसे राज्यों को कोई पत्र हिन्दी में भेजती हैं तो साथ-साथ उसका अंग्रेजी अनुवाद भी भेजेगी। पारस्परिक समझौते से यदि कोई भी दो राज्य आपसी पत्राचार में हिन्दी का प्रयोग करें तो इसमें कोई आपत्ति नहीं होगी।
  3. केंद्रीय सरकार के कार्यालयों, आदि के बीच पत्र व्यवहार के लिए हिन्दी अथवा अंग्रेजी का प्रयोग किया जाता है। लेकिन जब तक संबंधित कार्यालयों आदि के कर्मचारी हिन्दी का कार्य साधक ज्ञान प्राप्त न कर लें, तब तक पत्रादि का दूसरी भाषा में अनुवाद उपलब्ध कराया जाता रहेगा।
  4. राजभाषा अधिनियम की धारा 3 (3) के अनुसार निम्नलिखित कागज पत्रों के लिए हिन्दी और अंग्रेजी दोनों का प्रयोग अनिवार्य है- 1. संकल्प, 2. सामान्य आदेश, 3. नियम, 4. अधिसूचनाएँ, 5. प्रशासनिक तथा अन्य रिपोर्ट, 6. प्रेस विज्ञप्तियाँ, 7. संसद के किसी सदन या सदनो के समक्ष रखी जाने वाली प्रशासनिक तथा अन्य रिपोर्टें एवं 8. सरकारी कागजपत्र, 9. संविदाएँ, 10. करार, 11. अनुज्ञप्तियाँ, 12. अनुज्ञापत्र, 13. टेंडर नोटिस और 14. टेंडर फार्म।
  5. धारा 3 (4) के अनुसार अधिनियम के अधीन नियम बनाते समय यह सुनिश्चित कर लेना होगा कि यदि केंद्रीय सरकार का कोई कर्मचारी हिन्दी या अंग्रेजी में से किसी एक ही भाषा में प्रवीण हो, तब भी वह अपना सरकारी कामकाज प्रभावी ढंग से कर सके और केवल इस आधार पर कि वह दोनों भाषाओं में प्रवीण नहीं है, उसका कोई अहित न हो।
  6. राजभाषा (संशोधन) अधिनियम, 1967 द्वारा अधिनियम की धारा 3 (5) के रूप में यह उपबंध किया गया है कि उपर्युक्त विभिन्न कार्यों के लिए अंग्रेजी का प्रयोग जारी रखने संबंधी व्यवस्था तब तक जारी रहेगी, जब तक हिन्दी को राजभाषा के रूप में न अपनाने वाले सभी राज्यों के विधान मंडल अंग्रेजी का प्रयोग खत्म करने के लिए आवश्यक संकल्प पारित न करें और इन संकल्पों पर विचार करने के बाद संसद का प्रत्येक सदन भी इसी आशय का संकल्प पारित न कर दें।
  7. अधिनियम की धारा 7 के अनुसार किसी राज्य का राज्यपाल राष्ट्रपति की पूर्व सम्मति से, उस राज्य के उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए अथवा पारित किसी निर्णय, डिक्री अथवा आदेश के लिए, अंग्रेजी भाषा के अलावा, हिन्दी अथवा राज्य की राजभाषा का प्रयोग प्राधिकृत कर सकता है। तथापि यदि कोई निर्णय डिक्री या आदेश अंग्रेजी से किसी भिन्न किसी भाषा में दिया या पारित किया जाता है तो उसके साथ-साथ संबंधित उच्च न्यायालय के प्राधिकार से अंग्रेजी भाषा में उसका अनुवाद भी दिया जाएगा। अब तक उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और बिहार के राज्यपालों ने अपने उच्च न्यायालयों में उपर्युक्त उद्देश्यों के लिए राष्ट्रपति से हिन्दी के प्रयोग की अनुमति ली है।
- राजभाषा नीति के कार्यान्वयन की जिम्मेदारी भारत सरकार के सभी मंत्रालयों/विभागों पर है। इस नीति के समन्वय का कार्य राजभाषा विभाग करता है। यह विभाग समन्वय के लिए वार्षिक कार्यक्रमों को जारी करने के अलावा कई प्रकार की समितियों का गठन करके यह कार्य कर रहा है, जिनका विवरण इस प्रकार है:

1. **केंद्रीय हिन्दी समिति:** हिन्दी के विकास और प्रसार तथा सरकारी कामकाज में हिन्दी के अधिकाधिक प्रयोग के संबंध में भारत सरकार के विभिन्न मंत्रालयों एवं विभागों द्वारा कार्यान्वित किए जा रहे कार्यक्रमों का समन्वय करने और नीति संबंधी दिशा निर्देश देने वाली यह सर्वोच्च समिति है। प्रधानमंत्री जी की अध्यक्षता में गठित इस समिति में केंद्रीय सरकार के 11 मंत्री तथा राज्य मंत्री, राज्यों के 8 मुख्यमंत्री, 7 संसद सदस्य तथा हिन्दी के 10 विशिष्ट विद्वान् शामिल हैं। राजभाषा विभाग के सचिव एवं भारत सरकार के हिन्दी सलाहकार इसके सदस्य सचिव हैं।
2. **हिन्दी सलाहकार समितियाँ:** सरकार का यह निर्णय है कि राजभाषा नीति का कार्यान्वयन सुनिश्चित करने और इस संबंध में आवश्यक सलाह देने के लिए जनता के साथ अधिक संपर्क में आने वाले विभिन्न मंत्रालयों एवं विभागों में हिन्दी सलाहकार समितियाँ गठित की जाएँ। इस निर्णय के अनुसार 25 मंत्रालयों में उनके मंत्रियों की अध्यक्षता में हिन्दी सलाहकार समितियों का गठन किया गया है, जिनमें सदस्यों तथा हिन्दी के विशिष्ट विद्वानों के अतिरिक्त मंत्रालय विशेष के वरिष्ठ अधिकारी शामिल होते हैं। वे अपने मंत्रालय में हिन्दी का प्रयोग बढ़ाने के संबंध में आवश्यक विचार विमर्श करके निर्णय लेते हैं।
3. **राजभाषा कार्यान्वयन समितियाँ:** केंद्रीय सरकार के जिन कार्यालयों में कर्मचारियों की संख्या (चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों को छोड़कर) 25 या इससे अधिक है, वहाँ राजभाषा कार्यान्वयन समितियाँ बनाई गई हैं। मंत्रालयों व विभागों की राजभाषा कार्यान्वयन समितियों के अध्यक्षों को मिला कर एक केंद्रीय राजभाषा कार्यान्वयन समिति बनाई गई है, जो उसकी समस्याओं पर आंतरिक रूप से विचार करके उनका समाधान ढूँढती है। 1976 में लिए गए एक निर्णय के अनुसार ऐसे 55 नगरों में भी, जहाँ 10 या इनसे अधिक केंद्रीय कार्यालय है, नगर राजभाषा कार्यान्वयन समितियों का गठन किया गया है।

## संभावित प्रश्न

भारतीय राजभाषा का दर्जा प्राप्त होने के बाद भी हिंदी की स्थिति दोगुम दर्जे की ही रही है। इसका एक कारण संविधान सभा एवं आरंभिक लोगों के द्वारा इस मुद्दे के प्रति अपनाया गया दृष्टिकोण था। चर्चा कीजिए।

# तेल के खेल में साहूकार बनी सरकार

साभार: दैनिक ट्रिब्यूनल  
( 15 सितंबर, 2017 )

राजकुमार सिंह  
(संपादक, दैनिक ट्रिब्यूनल)

## सार

इस लेख में लेखक ने देश में लगातार बढ़ रही पेट्रोल डीजल की कीमतों के संदर्भ में यह बताने की कोशिश की है कि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर क्रूड तेल की कीमत में कमी के बावजूद भारत में पेट्रोल की कीमत बढ़ते जाने से सरकार का राजस्व लाभ लगातार बढ़ता जा रहा है।

**विशेष- यह लेख सामान्य अध्ययन प्रश्न पत्र-III ( भारतीय अर्थव्यवस्था ) के लिए महत्वपूर्ण है।**

पिछले दिनों नरेंद्र मोदी मंत्रिमंडल में हुए फेरबदल में पदोन्नति पाने वाले धर्मेंद्र प्रधान ने कहा था कि पेट्रोल-डीजल की कीमतों का हर रोज निर्धारण करने वाली प्रणाली नहीं बदली जायेगी, क्योंकि यह उपभोक्ताओं के हित में है। अब उन्होंने प्रधान ने पेट्रोल-डीजल की कीमतों में आसमानी उछाल पर अपनी लाचारगी जताते हुए कहा कि इन्हें जीएसटी के दायरे में लाने पर विचार किया जाना चाहिए। केंद्रीय पेट्रोलियम मंत्री के ये दो बयान दरअसल सरकार की कथनी-करीनी के अंतर को भी बेनकाब करते हैं। याद रहे कि बढ़ते पेट्रोलियम आयात से खजाने पर बढ़ते सब्सिडी बोझ से मुक्ति के लिए पेट्रोल और डीजल की कीमतों को सरकारी नियंत्रण से क्रमशः वर्ष 2010 और 14 में ही मुक्त कर दिया गया था। दोनों ही बार तर्क दिया गया कि अंतर्राष्ट्रीय बाजार में कीमतों में उतार-चढ़ाव के आधार पर मूल्य निर्धारण का अधिकार सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियों को सौंप कर सरकार बीच से हट जाना चाहती है।

आंकड़े गवाह हैं कि तब भी अंतर्राष्ट्रीय बाजार में कच्चे तेल के मूल्य में समय-समय पर आने वाली गिरावट का पूरा लाभ तत्काल उपभोक्ताओं को नहीं दिया गया, पर मूल्य निर्धारण में अपनी प्रत्यक्ष भूमिका समाप्त की घोषणा कर सरकार अपनी राजनीतिक जवाबदेही और उसके जोखिम से मुक्त अवश्य हो गयी। जरा 2014 से पहले का परिदृश्य याद कीजिए : किस तरह पेट्रोल-डीजल की कीमतों में एक-दो रुपये की वृद्धि पर भी भाजपा तत्कालीन कांग्रेसीत संग्रम सरकार के विरुद्ध सड़कों पर उतर आती थी। तब भाजपा प्रवक्ता दुनियाभर के आंकड़े दे-दे कर बताते थे कि भारत में इतना महंगा पेट्रोल-डीजल इसलिए है, क्योंकि उस पर टैक्स की भरमार है।

बेशक भाजपा प्रवक्ता-नेता गलत नहीं कहते थे। एक जागरूक विपक्षी दल के रूप में भाजपा की उस भूमिका की प्रशंसा भी की जा सकती है, जो महंगाई के मुद्दे पर हमेशा ही मनमोहन सिंह सरकार पर दबाव बनाये रखती थी, लेकिन सत्ता में आने के बाद एकदम विपरीत आचरण अब उसे ही कठघरे में भी खड़ा कर रहा है। सवाल सिर्फ भावनाएं उभार कर रसोई गैस सिलेंडर पर मिलने वाली सब्सिडी के दायरे से एक बड़े वर्ग को बाहर करने और फिर सब्सिडी वाले सिलेंडर की कीमतों में लगातार वृद्धि का ही नहीं है, पेट्रोल-डीजल की कीमतों के मामले में भी नरेंद्र मोदी की अगुवाई वाली भाजपानीत राजग सरकार एक मुनाफाखोर साहूकार की तरह व्यवहार कर रही है। अंतर्राष्ट्रीय बाजार में कच्चे तेल की कीमतों में भारी गिरावट का पूरा लाभ उपभोक्ताओं के देने से बचने के लिए तरह-तरह के बहाने गढ़ती रही मोदी सरकार ने इसी साल 16 जून को पेट्रोल-डीजल की कीमतें रोज निर्धारित करने वाली डेली डायनामिक प्राइसिंग प्रणाली (डीडीपी) शुरू करते हुए भी उपभोक्ताओं को यही सब्जबाग दिखाये थे कि अब उन्हें तत्काल लाभ मिल पायेगा। आंकड़े बताते हैं कि वास्तविकता ठीक इसके उलट है।

पहले पेट्रोल-डीजल की कीमतों में एक-दो रुपये की वृद्धि पर ही भारत बंद तथा जनता से सरकार से सहयोग न करने का आह्वान करने वाली भाजपा के राज में दैनिक मूल्य निर्धारण प्रणाली लागू होने के बाद से ही पेट्रोल की कीमत पांच रुपये प्रति लीटर बढ़ चुकी है। जाहिर है, डीजल भी ज्यादा पीछे नहीं है। दरअसल, पेट्रोल और डीजल, दोनों के ही दाम घरेलू बाजार में पिछले तीन साल के उच्चतम स्तर पर पहुंच गये हैं। यह जानना चौंकाने वाला हो सकता है कि घरेलू बाजार में पेट्रोल-डीजल के दामों में यह उछाल तब है, जबकि अंतर्राष्ट्रीय बाजार में कच्चे तेल की कीमतों में 50 प्रतिशत से भी ज्यादा की कमी आयी है। आंकड़ों की ही भाषा में बात करें तो वर्ष 2014 में अंतर्राष्ट्रीय बाजार में कच्चे तेल की कीमत 6291 रुपये प्रति बैरल थी, जो अब 3392 रुपये प्रति बैरल ही रह गयी है, लेकिन इस अभूतपूर्व गिरावट का सही लाभ उपभोक्ताओं को कभी नहीं मिला। जरा याद कीजिए, अंतर्राष्ट्रीय बाजार में मनमोहन सिंह के प्रथम मंत्रित्वकाल में आसमान छू रहे कच्चे तेल के दामों में अपने कार्यकाल में आयी गिरावट पर प्रधानमंत्री मोदी ने खुद को नसीबवाला बताया था, पर उस नसीब का लाभ उन्होंने देशवासियों को नहीं दिया।

बेशक यह भी हैरत की ही बात है कि एक-दो रुपये की मूल्य वृद्धि पर हायतौबा मचाने वाली जनता भी इस खुली लूट पर खामोश है, और मीडिया में भी ज्यादा चर्चा नजर नहीं आती। वैसे सरकार दावा कर सकती है कि पेट्रोल-डीजल के मूल्य निर्धारण में उसकी कोई भूमिका नहीं है, क्योंकि मूल्य निर्धारण सरकारी नियंत्रण से मुक्त हो जाने के बाद यह काम सार्वजनिक क्षेत्र की तीन प्रमुख तेल कंपनियों : इंडियन ऑयल, हिंदुस्तान पेट्रोलियम और भारत पेट्रोलियम करती हैं, लेकिन यह अर्धसत्य के सिवाय कुछ और नहीं। क्या सरकार ने देश को बाजार के हवाले छोड़ दिया है? खुली बाजार व्यवस्था का अर्थ लूट तो हरगिज नहीं हो सकता। यह जानना भी जरूरी



है कि ये तेल कंपनियां एक लीटर कच्चे तेल के लिए मात्र साढ़े 21 रुपये ही भुगतान करती हैं। उसके बाद उस पर एंटी टैक्स, रिफायनरी प्रोसेसिंग, लैंडिंग समेत दूसरे तमाम खर्च भी साढ़े नौ रुपये प्रति लीटर से कुछ कम ही बैठते हैं यानी कंपनियों की लागत 31 रुपये प्रति लीटर ही पड़ती है। ऐसे में यह सवाल अनुत्तरित ही रह जाता है कि फिर पेट्रोल मुंबई में लगभग 80 रुपये और दिल्ली में 70 रुपये प्रति लीटर क्यों बिक रहा है? बेशक इस स्वाभाविक सवाल का उत्तर भी है, लेकिन सच से मुंह चुराने की सरकारी संस्कृति पुरानी है। सच यह है कि देश में पेट्रोल महंगा इसलिए है, क्योंकि उस पर 48 रुपये प्रति लीटर से भी ज्यादा तो सरकारी कर लगते हैं।

जाहिर है, ये सारे कर सार्वजनिक क्षेत्र की तेल कंपनियों नहीं लगातीं, केंद्र और राज्य सरकार लगाती हैं। अच्छे दिन लाने का वादा करने वाली सरकार का एक और सच भी जान लीजिए : वर्ष 2014 से अब तक पेट्रोल पर एक्साइज ड्यूटी 126 प्रतिशत बढ़ायी जा चुकी है। चौंकिए मत, डीजल पर तो यह वृद्धि 374 प्रतिशत है। फिर आश्चर्य कैसा कि एक्साइज ड्यूटी कलेक्शन वर्ष 2014 के 99184 करोड़ रुपये से बढ़कर अब 242691 करोड़ रुपये हो गया है। क्या और भी कोई सबूत चाहिए सरकार के मुनाफाखोर साहूकार बन जाने का? यह भी जान लीजिए कि जिस जीएसटी को लागू किये जाने पर हायतौबा मच रही है, उसके दायरे में लाये जाने पर पेट्रोल-डीजल सस्ते ही होंगे, क्योंकि जीएसटी की उच्चतम दर 28 प्रतिशत ही है, जबकि पेट्रोल-डीजल पर सरकार कई गुणा कर वसूल रही है। मोदी सरकार अपने सवा तीन साल के शासनकाल में ही पेट्रोलियम पदार्थों पर 11 बार एक्साइज ड्यूटी बढ़ा चुकी है। पिछले चार महीनों में ही केंद्र और राज्य सरकारें पेट्रोलियम पदार्थों पर एक्साइज ड्यूटी के जरिये एक लाख 13 हजार करोड़ रुपये वसूल चुकी हैं, तो तेल कंपनियों साढ़े 17 हजार करोड़ रुपये। जाहिर है, शराब के साथ ही पेट्रोलियम पदार्थ भी सरकारों का खजाना भरने का सबसे बड़ा स्रोत बने हुए हैं। ऐसे में यह देखना दिलचस्प होगा कि पेट्रोलियम मंत्री अपनी सलाह पर खुद अपनी सरकार को सहमत करने के लिए कुछ करते भी हैं क्या।

## संबंधित तथ्य

### ऐसे 31 रुपए में तैयार होता है पेट्रोल

इंडियन ऑयल, हिंदुस्तान पेट्रोलियम और भारत पेट्रोलियम कच्चे तेल को रिफाइन करती हैं। कैच न्यूज की एक रिपोर्ट के मुताबिक ये कंपनियां एक लीटर कच्चे तेल के लिए 21.50 रुपए का भुगतान करती हैं। इसके बाद एंटी टैक्स, रिफाइनरी प्रोसेसिंग, लैंडिंग कॉस्ट और अन्य ऑपरेशनल कॉस्ट को मिला दें तो एक लीटर कच्चे तेल को रिफाइन करने में 9.34 रुपए खर्च होते हैं। इसका मतलब है कि एक लीटर पेट्रोल तैयार करने में ऑयल कंपनियों को करीब 31 रुपए का खर्च आता है। ऐसे में आज आप अगर 1 लीटर पेट्रोल के लिए 79 रुपए तक भर रहे हैं, तो इसके लिए इन पर वसूला जाने वाला टैक्स जिम्मेदार है।

### इसलिए नहीं मिल रहा आपको फायदा

ऑयल कंपनियों के स्तर पर 31 रुपए में 1 लीटर पेट्रोल तैयार हो जाता है। इसके बाद उस पर केंद्र सरकार की तरफ से टैक्स वसूला जाता है। इसका मतलब है कि आप 48 रुपए से ज्यादा तो सिर्फ टैक्स दे रहे हैं। साल 2014 से अब तक केंद्र सरकार ने पेट्रोल पर एक्साइज ड्यूटी 126 फीसदी बढ़ा दी है। वहीं, डीजल पर लगाने वाली ड्यूटी में 374 फीसदी की बढ़ोतरी हुई है।

### डायनैमिक प्राइसिंग का है जोर

एक समय ऐसा भी था जब पेट्रोल और डीजल की कीमतों में 50 पैसे या 1 रुपए की भी बढ़ोतरी हो जाती थी, तो हंगामा हो जाता था। विपक्ष इसके खिलाफ मोर्चा निकाल लेता था। लेकिन आज कीमतें तीन साल के सबसे ऊंचे स्तर पर पहुंच गई हैं, लेकिन इस तरफ किसी का ध्यान नहीं जा रहा है। दरअसल इसकी वजह है डायनैमिक प्राइसिंग। दरअसल केंद्र सरकार ने 16 जून को डायनैमिक प्राइसिंग अपनाई थी। इसके तहत पेट्रोल-डीजल की कीमतों में हर दिन बदलाव किया जाता है।

### बचत का इस्तेमाल इन्फ्रास्ट्रक्चर पर

केंद्र सरकार को अप्रैल, 2015 से मार्च, 2017 के बीच 1.6 खरब रुपये की कमाई हुई। यदि आप इसे प्रतिशत में बदलें तो पेट्रोल पर एक्साइज टैक्स 150 फीसदी बढ़ चुका है और डीजल पर तो इससे भी ज्यादा। इससे सरकार को तेल पर सब्सिडी खर्च घटाने का मौका मिला। मार्च 2014 में समाप्त हुए वित्त वर्ष में सब्सिडी बिल 1.4 खरब रुपये का था। इस साल मार्च में यह बमुश्किल 0.19 खरब (19 हजार करोड़) रुपये था। इस बचत का इस्तेमाल इन्फ्रास्ट्रक्चर, स्वच्छ भारत (क्लीन इंडिया), सार्वजनिक बैंकों की पूंजी जरूरत पूरी करने और मनरेगा आदि के लिए किया गया। तेल से हुई कमाई का ही नतीजा है कि इन चीजों पर खर्च बहुत अधिक बढ़ जाने के बावजूद सरकार वित्तीय घाटे को रोक पाई, बल्कि इसमें कमी आई है। यह अंतरराष्ट्रीय एजेंसियों में हमारी क्रेडिट रेटिंग को स्थिर बनाए रखने के लिए जरूरी है।

## संभावित प्रश्न

सरकार के द्वारा तेल की अंतर्राष्ट्रीय कीमतों में कमी के बावजूद घरेलू कीमतों को राजस्व लाभ के लिए ऊंचा रखना उचित है? अपने उत्तर के पक्ष में तर्क प्रस्तुत करें।

# जापान के साथ रिश्तों की नई सरकार

साभार: हिन्दुस्तान  
( 16 सितंबर, 2017 )

शशांक  
( पूर्व विदेश सचिव )

## सार

इस लेख में लेखक ने पिछले दिनों हुए जापानी प्रधानमंत्री शिंजो अबे के दौरे पर भारत-जापान सहयोग की चर्चा की है और बताया है कि हाल ही में हुए ये समझौते भारत-जापान संबंधों को एक नई रफ्तार प्रदान करेंगे।

**विशेष- यह लेख सामान्य अध्ययन प्रश्न पत्र-II ( अंतर्राष्ट्रीय संबंध ) के लिए महत्वपूर्ण है।**

जापान के प्रधानमंत्री शिंजो अबे का भारत दौरा कई मायनों में मील का पत्थर साबित हुआ है। जापान भारत के साथ मजबूत दोस्ती का हिमायती है और इसको लेकर वह संकल्पित भी दिखा। इस यात्रा में दर्जन भर से अधिक करार हुए, जो नागरिक उड्डयन, कारोबार, विज्ञान व प्रौद्योगिकी, कौशल विकास जैसे क्षेत्रों से जुड़े हैं। ये समझौते बताते हैं कि भारत और जापान के रिश्तों में अब कितनी गरमाहट आ चुकी है, खासतौर से इन्फ्रास्ट्रक्चर के क्षेत्र में आई प्रगति उल्लेखनीय है। मुंबई और अहमदाबाद के बीच प्रस्तावित बुलेट ट्रेन परियोजना के लिए जापान ने मामूली शर्तों पर 88 हजार करोड़ रुपये का कर्ज देने की बात कही है। इसे चुकाने के लिए 50 साल का वक्त तो दिया ही गया है, ब्याज की दर भी काफी कम यानी 0.1 फीसदी रखी गई है। इस परियोजना से देश में तकनीकी अपग्रेडेशन का काम भी तेज होगा। यह काम इसलिए भी बहुत जरूरी है, क्योंकि भारतीय रेल फिलहाल तकनीक के मोर्चे पर काफी पीछे है।

शिंजो अबे की यात्रा यह भी बता रही है कि आने वाले दिनों में भारत और जापान के बीच सांस्कृतिक आदान-प्रदान तेज होंगे। यह स्वाभाविक है, क्योंकि जब जापान से आई तकनीकी विशेषज्ञों की टीम यहां रहेगी, तो दूसरी कई कंपनियों के लोग आएंगे और पीपुल-टु-पीपुल कॉन्टेक्ट ( आम लोगों के स्तर पर संबंध ) विकसित होंगे। इससे दोनों देश सांस्कृतिक रूप से करीब आएंगे ही। इन सबके अलावा प्रधानमंत्री मोदी ने देश में अधिक से अधिक जापानी रेस्तरां खुलने की उम्मीद भी जताई है। यह सही है कि भारत में जापानी रेस्टरांट मौजूद हैं, लेकिन इनकी संख्या काफी कम है, और जो हैं भी, वे बहुत महंगे हैं। जापान को करीब से जानने वालों को पता होगा कि वहां पर 'बेंटो बॉक्स' कितना लोकप्रिय है। एक पारंपरिक बेंटो बॉक्स में चावल या नूडल्स, मछली या मीट, अचार और सूखी सब्जी होती है। यह वहां के आम जनजीवन का हिस्सा है। उम्मीद है कि जब अपने यहां जापानी रेस्तरां खुलेंगे, तो जिस तरह मैकडॉनल्ड को हमने अपनाया, उसी तरह जापानी रेस्तरां का भी हम स्वागत करेंगे।

इस यात्रा से भारत में जापानी निवेश के नए युग की शुरुआत हो रही है। भले ही पिछले एक साल के भीतर जापानी कंपनियों का निवेश 60-70 फीसदी बढ़ा है, मगर जापानी प्रधानमंत्री के इस दौरे में हुए कई करार सुखद बदलाव के वाहक हैं। खास तौर से इन्फ्रास्ट्रक्चर, नागरिक उड्डयन व विज्ञान-प्रौद्योगिकी के क्षेत्रों में निवेश काफी बढ़ने की उम्मीद है। यह जरूर है कि रक्षा क्षेत्र में कोई ठोस समझौता इस यात्रा में आकार नहीं ले सका, लेकिन दोनों प्रधानमंत्रियों की बातों पर गौर करें, तो लगता यही है कि इस पर सहमति बनाई जा रही है और देर-सवेर यहां से भी, खास तौर से रक्षा उपकरणों की लेकर हमें अच्छी खबर मिलेगी। यदि यह संभव हुआ, तो जापान पहली बार किसी देश के साथ इस तरह का रक्षा करार करेगा।

इसी तरह, पूर्वोत्तर भारत के इन्फ्रास्ट्रक्चर को विकसित करने में जापान की रुचि का भी स्वागत किया जाना चाहिए और उस मुक्त व खुले 'इंडो-पैसिफिक रीजन' की कवायद का भी, जिसके तहत समुद्री क्षेत्रों में एक-दूसरे की संप्रभुता और अंतरराष्ट्रीय कानूनों के सम्मान की बात कही गई है। यह खासतौर से चीन जैसे देशों के लिए संदेश है, जिसका दक्षिण चीन सागर में कई दूसरे देशों के साथ तनाव बना रहता है। यह बड़ी बात है, और इन पर शिंजो अबे का कहना बिल्कुल उचित है कि ये तमाम करार ग्लोबल भी हैं, सामरिक भी, और 'स्पेशल' तो ये हैं ही।

जापानी प्रधानमंत्री की इस यात्रा पर चीन की खास नजर रही। वहां शंका के कुछ स्वर उठे हैं, पर बीजिंग को समझना चाहिए कि भारत चीन को अलग-थलग करने का पक्षधर नहीं है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी का ब्रिक्स सम्मेलन में शिरकत करना



और आतंकवाद के मोर्चे पर चीन को मनाना इसी की तस्दीक करता है। नई दिल्ली जानती है कि समग्रता में विकास तभी संभव है, जब सभी देश एक छतरी के नीचे आएँ। अभी आतंकवाद का मसला गरम है और उत्तर कोरिया अपने मिसाइल कार्यक्रम को बढ़ावा देकर वैश्विक शांति को बार-बार चुनौती दे रहा है। ऐसे में, जरूरी यही है कि चीन और भारत भी द्विपक्षीय रिश्तों को एक नई ऊंचाई दें। शिंजो अबे की तरफ दोस्ती का मजबूत हाथ बढ़ाकर प्रधानमंत्री मोदी ने चीन को यही संदेश देने की कोशिश की है।

हां, यह बात और है कि जापानी प्रधानमंत्री की इस यात्रा ने नरेंद्र मोदी की छवि को भी एक नया मुकाम दिया है। वह निजी तौर पर ऐसी परियोजनाओं, खासकर बुलेट ट्रेन में रुचि ले रहे थे, और इसका नतीजा भी सुखद आया है। इससे दूसरे तमाम देशों में यह संदेश गया है कि अगर वे भारत को साथ लेकर कुछ करना चाहते हैं, तो प्रधानमंत्री के स्तर पर बात होनी चाहिए, क्योंकि प्रधानमंत्री दोतरफा रिश्तों के हिमायती हैं। इसलिए जरूरी है कि चीन भी अब संवेदनशीलता दिखाएँ और जिस तरह जापान ने इन्फ्रास्ट्रक्चर के काम में भारत की चिंताओं को समझा है, चीन भी वैसा ही रुख दिखाएँ। 'वन बेल्ट-वन रोड इनिशिएटिव' के तहत इन्फ्रास्ट्रक्चर के जो प्रोजेक्ट चल रहे हैं, उनसे जुड़ी भारत की चिंताएँ उसे समझनी होंगी।

उल्लेखनीय यह भी है कि भारत-जापान-ऑस्ट्रेलिया और भारत-जापान-अमेरिका के बीच त्रिपक्षीय फोरम पहले से मौजूद हैं। अब इनको एक करके संयुक्त फोरम बनाने की बात चल रही है। यह सलाह ऑस्ट्रेलिया की तरफ से आई थी। अगर ऐसा हुआ, तो इससे भी भारत और जापान का द्विपक्षीय रिश्ता परवान चढ़ेगा। भारत हमेशा से सकारात्मक रिश्तों का हिमायती रहा है, इसलिए उम्मीद है कि जिन मसलों पर जापानी प्रधानमंत्री से इस बार बात नहीं हो पाई, उन पर जल्दी ही सहमति बन सकेगी।

## संबंधित तथ्य

आबे का भारत दौरा सांकेतिक और व्यावहारिक रूप से अत्यंत महत्वपूर्ण है, यह यात्रा न सिर्फ भारत के साथ जापान के रिश्तों को गहन बनाती है, बल्कि कम से कम जापान में इसे एशिया में चीन की ताकत को संतुलित करने का प्रभावी तरीका भी समझा जा रहा है।

**नागरिक परमाणु समझौता:** बातचीत की एक प्राथमिकता रक्षा संबंधों और नागरिक परमाणु सहयोग की बातचीत को आगे बढ़ाना है। भारत ऊर्जा जरूरतों को पूरा करने और वायु प्रदूषण को कम करने के लिए अपने परमाणु बिजली उद्योग के आकार और क्वालिटी को बेहतर करना चाहता है। दूसरी ओर जापान भारत को परमाणु तकनीक के निर्यात का रास्ता साफ करना चाहता है। जेम्स ब्राउन का कहना है कि जापानी परमाणु उद्योग की घरेलू समस्याओं को देखते हुए अंतरराष्ट्रीय समझौतों का महत्व बढ़ गया है। लेकिन जापान की ओर से बाधाएँ भी हैं क्योंकि भारत ने परमाणु अप्रसार संधि पर दस्तखत नहीं किए हैं। आर्थिक विश्लेषक राजीव विश्वास कहते हैं, बातचीत का लक्ष्य होगा धीरे धीरे पारस्परिक परमाणु समझौते की ओर बढ़ना। यही राय बॉशिंगटन के बुडो विल्सन सेंटर के माइकल कुगोलमन की भी है, कई नाजुक मुद्दों पर सहमति होनी है। दोनों देशों में परमाणु मुद्दे पर संवेदनशीलता के चलते वे सख्त सुरक्षा कदमों पर जोर देंगे।

**सुरक्षा और आर्थिक सहयोग :** सुरक्षा के जुड़े मुद्दे भी बातचीत के केंद्र में होंगे। दोनों देश तकनीकी गोपनीयता को लीक होने से रोकने का समझौता करेंगे जो दोनों देशों के बीच हथियारों की खरीद फरोख्त का आधार होगा। जेम्स ब्राउन कहते हैं, यह महत्वपूर्ण है क्योंकि सख्त नियंत्रण जापान के लिए भारत के साथ रक्षा उपकरणों के क्षेत्र में सहयोग बढ़ाने की प्रमुख शर्त है। आबे के दौर पर पहला प्रमुख रक्षा समझौता खोज और बचाव कार्य में इस्तेमाल होने वाले यूएस 2 विमानों के संयुक्त प्रोडक्शन का होगा। जापान की सिर्फ आर्थिक दिलचस्पी नहीं है, बल्कि इलाके के देशों के साथ रक्षा सहयोग बढ़ाकर चीन के प्रभाव को कम करना भी है।

रक्षा और ऊर्जा के अलावा जापान इस मौके पर खुद को भारत के संरचना पार्टनर के रूप में पेश करेगा। राजीव विश्वास का कहना है कि नगर विकास भारत जापान विकास सहयोग का मुख्य इलाका है। जापान भारत को दिल्ली मुंबई कॉरीडोर में शहरों और औद्योगिक इलाकों के अलावा स्मार्ट सिटीज के विकास में मदद दे रहा है। इसके अलावा जापान कई सालों से भारत को अपनी बुलेट ट्रेन तकनीक बेचना चाहता है। भारत भी रेल के विकास में विदेशी सहयोग चाह रहा है। जापान ने मुंबई अहमदाबाद बुलेट रेल प्रोजेक्ट के लिए 15 अरब डॉलर का सस्ता लोन ऑफर किया है।

**स्वाभाविक रिश्ते :** भारत और जापान के रिश्तों को बेहतर बनाना नरेंद्र मोदी की एक ईस्ट नीति का हिस्सा है जिसका लक्ष्य एशिया प्रशांत के देशों के साथ भारत के रिश्तों को मजबूत करना है। इसलिए आबे और मोदी की दिलचस्पी पारस्परिक व्यापार को बढ़ाने की है जो 2014 में 15 अरब डॉलर थी। राजीव विश्वास का कहना है कि जापान के निर्यात में भारत का हिस्सा सिर्फ 112 प्रतिशत है जबकि चीन को जापान का 18.3 प्रतिशत निर्यात होता है। जापान ने आने वाले पांच सालों में भारत में करीब 35 अरब डॉलर निवेश करने का फैसला लिया है।

शिंजो आबे की इस यात्रा से भारत जापान संबंधों में और तेजी आएगी। दिल्ली के रक्षा अध्ययन और विश्लेषण संस्थान की स्मृति पटनायक का कहना है कि दोनों देशों के सामरिक हित एक दूसरे से मिलते हैं जिसका असर उनके रिश्तों पर दिखेगा, जापान भारत में आर्थिक तौर पर सक्रियता बढ़ा रही है, वैश्विक मुद्दों पर भी दोनों देशों के विचारों में समानता आएगी। लेकिन सीमाएं भी हैं। दक्षिण एशिया विशेषज्ञ जयशंकर कहते हैं, भारत जापान के लिए अमेरिका का विकल्प नहीं हो सकता और न ही जापान भारत को वह सब कुछ दे सकता है, जो भारत चाहता है। लेकिन निकट भविष्य में आम रिश्तों पर कोई सवाल नहीं उठेगा।

## संभावित प्रश्न

भारत-जापान के मध्य हुए पिछले कुछ समझौते दोनों देशों के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण होंगे। इस कथन के संदर्भ में भारत-जापान को इन समझौतों से होने वाले बिभिन्न लाभों की चर्चा करें।